Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Impact Factor (IIJIF): 5.454 | Vol. 8, Issue 1 | May. 2020 - October 2020 | pp. 69-74

तोरावाटी के लोकगीत : संदर्भ एवं प्रासंगिकता

डॉ. राम सिंह गुर्जर

रा.उ.मा.वि. भालोजी, कोटपूतली, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

लोकगीतों की दृष्टि से न केवल तोरावाटी क्षेत्र अपितु सम्पूर्ण राजस्थान प्रान्त ही सम्पन्न है। प्रस्तुत शोधपत्र में तोरावाटी लोकगीतों का संदर्भ एवं प्रांसगिकता बतलाने का प्रयास किया गया है। लोकगीत मानव-मनोभावों की सहज एवं सरस अभिव्यक्ति हैं। ये लोकगीत विश्व के अपार ज्ञान के स्रोत होते हैं, जिनमें मानव-मन को अभिप्रेरित करने की क्षमता होती है। ये लोकगीत, वर्तमान मानव समाज एवं प्रकृति से सम्बद्ध अनेक विसंगतियों, चुनौतियों, समस्याओं एवं उलझनों की ओर सहज ही हमारा ध्यान आकर्षण करते हैं। प्रकृति प्रेम एवं पर्यावरण संरक्षता के अनेक लोकगीत पाये जाते हैं। जिन्हें गा या सुनकर मानव मन में स्वत: ही चेतना एवं जागृति का संचार होता है। लोकगीत हमें समाज-सापेक्ष नियम सिखाते हैं, कर्त्तव्य का बोध कराते हैं और हमें कर्मयोगी बनाते हैं। ये गीत हमारी पुरातन संस्कृति के पक्षक एवं संरक्षक हैं, साथ ही इनके माध्यम से सामाजिक समरसता एवं पारस्परिक रिस्तों के प्रति विश्वास का भाव बढ़ता है। पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रसंगो पर रचे गये लोकगीत, जो पीढ़ी दर पीढ़ी लोक जुबान पर अविरल चलते रहते हैं, ये गीत ऐतिहासिक अन्वेषण की पृष्ठभूमि को समझने में बड़े महत्व के होते हैं। स्वयं लोकगीत भी अपने आप में लोक मनोरंजन का कार्य करते हैं, जिनके गायन व श्रवण से आर्थिक रूप से व्यस्त मानव मानसिक लाभ प्राप्त करता है।

संकेताक्षर : *तोरावाटी, लोकगीत, प्रकृति, समाज, संस्कृति*

प्रस्तावना

राजस्थान प्रान्त का उत्तरी पूर्वी भाग तोरावाटी लोकगीतों की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न क्षेत्र है। इन लोकगीतों में विचारों एवं भावनाओं के सौम्य स्वरूप की अभिव्यक्ति है। रूदन, रोष, भय, घृणा, विवशता, भक्ति, वीरता, भीरूता, मिलन, विरह, हास्य, आदि सुक्ष्म मनोभावों का विशिष्ट सौन्दर्य इन लोकगीतों में अभिव्यंजित होता है। ये लोकगीत टूटते वर्तमान समाज में मानवीय मूल्यों के पक्षक एवं संरक्षक है। दूसरी तरफ इन लोकगीतों का परिवेश भी बड़ा व्यापक है। व्यक्ति का पारिवारिक जीवन, आर्थिक जीवन और धार्मिक जीवन आदि सब कुछ इन लोकगीतों में समाविष्ट हैं। इनमें प्रकृति-प्रेम और पर्यावरण चेतना के लोकगीत भी समाहित है। इस वैज्ञानिक युग में बिगड़ते हुए पर्यावरण सन्तुलन को पुन: सुधारने की जन-जागृति के सन्दर्भ में भी ये लोकगीत समाज की अमूल्य निधि हैं। इन लोकगीतों में सर्वाधिक संख्या संस्कारों, त्योंहारों व पर्वो के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों की है।[1] वर्तमान समय में पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण से हमारी मूल संस्कृति के मूल्यों को खतरा उत्पन्न हो गया है। उन मूल्यों के संरक्षण में इन लोकगीतों का अतुलनीय योगदान है।

भारतीय संस्कृति में सोलह संस्कार माने गये हैं।[2] प्राय: इस क्षेत्र में लोक गीत सभी संस्कारों से सम्बन्धित पाये जाते हैं। परिवार में बालक के जन्मोत्सव पर गाये जाने वाले गीत ''होलर या जच्चा'' कहे जाते हैं। इन गीतों में प्राय: वंश वृद्धि का उल्लास, जच्चा-बच्चा की खूबसूरती का यशोगान और सुरक्षा की मंगल कामना की जाती है।[2] वर्तमान में हमारी केन्द्र और राज्य सरकार जच्चा और बच्चा की सुरक्षा को लेकर चिंतित है। उनकी सुरक्षा को लेकर अनेक योजनाएं चला रही है, लेकिन जब तक समाज के लोग जाग्रत नहीं होंगे तब तक जच्चा और बच्चा की सुरक्षा की कोई गारन्टी नहीं है। ये जाग्रती का कार्य लोकगीत करते हैं। जच्चा की सुरक्षा की भावना पर आधारित एक लोक गीत इस प्रकार है-[3]

जच्चा न्हाले-नाहण संजाले मरवां की काँखी बाले ऐ

सुहागण जच्चा म्हारी,

जलम लियो पीळों ओढ़ो सरबरीयां रो घाट दोखो

ऐ थम धोखर मुडलै बैठो ऐ,

सुहागण जच्चा म्हारी।।

जीवन के यथार्थ का भी बड़ा सजीव चित्रण इन लोकगीतों में हुआ है। परिवार इन गीतों की केन्द्र भूमि है। माँ-बाप, भाई-बहिन, देवर-भाभी, ननद-भौजाई, सास-ससुर, पति-पत्नी, जेठ-जेठानी, जीजा-साली, के अन्तर और बास्रय की परस्पर संबन्धों की बड़ी यथार्थ अभिव्यक्ति इन गीतों में हुई है। पारिवारिक जीवन के आदर्श संबन्धों की पावन आधारशिला का निर्माण लोकगीतों के माध्यम से किया जा सकता है। आज के पारिवारिक व सामाजिक जीवन के टूटते रिस्तों की कड़ी को जोड़ने के लिए लोकगीतों की भाव-भूमि बड़ी सहायक है।[4] यथार्थ जीवन का चित्रण इन लोकगीतों में बड़े रोचक ढ़ंग से प्रस्तुत है। काम और श्रृंगार का इन गीतों में खुलकर वर्णन हुआ है, किन्तु यौवन संबन्धों की स्वतन्त्रता को कहीं पर भी स्वीकृति नहीं। पातिव्रत्य और निर्मल प्रेम का वर्णन ही सर्वत्र रहा है। पति-पत्नी के मधुर एवं आदर्श संबन्ध इन गीतों में चित्रित है, यथा -

रै वा पतली कमर को छैल, छैल परदेशी व्हग्यों रै

रै वा दिन की लेग्यो भूख, रात की निन्द्रा लेग्यो वो

रै सासू राणी का सा भेख, भेख भंगण का देग्यो ऐ।

उपर्युक्त गीत अंश पति-पत्नी के आदर्श प्रेम संबन्ध पर आधारित है जो वर्तमान में पति-पत्नी के परस्पर बढ़ते अविश्वास पर विश्वास की प्रेरणा देने तथा आदर्श संबन्ध का संवर्द्धन करने की शिक्षा देता है।

ये लोकगीत हमारे आदर्श धार्मिक ग्रन्थों के पात्र श्रवण, श्रीराम, सत्यवान जैसे आदर्श बेटों का स्मरण करवाकर आदर्श पुत्र होने की तालीम देते हैं -

''श्रवण सा पूत दुनिया मैं रै कोई हुया ना होग्या आगै

मायड़-बाप बैठा कावड़िया थीरथ धाम घुमायो ऐ।

इधर कोई गौरी का पिया परदेश जाते हैं तो अपनी गौरी को अपने परिवार-जनों की सेवा एंव संयमित जीवन जीने का पाठ पढ़ाकर जाते हैं-

''गौरी जहाज भरी छै नीर की गोरी हम तो चले परदेश

मन अपणै ने डाटिए

गौरी सास तेरी मांय छै गौरी ससुर धर्म को बाप

गौरी छोटो भाई बीर ऐ तेरो मन अपणै नै डाटिए।[5]

इसी प्रकार भाई-बहनों के मधुर संबन्धों पर आधारित अनेक लोकगीत सुनने को मिलते हैं। भाई-बहिनों में कितना अपनत्व सहित सरस व्यवहार होना चाहिए, ऐसी भावना इन लोकगीतों में समाहित है। अपनी बहिन के पुत्र-पुत्री के विवाह के दिन भैया द्वारा अपनी बहिन के भात भरने की रस्म निभाई जाती है। इस अवसर पर स्त्रियों द्वारा भात के गीत गाये जाते हैं। इन गीतों की भाव-भूमि में बहिन भावुक स्रदय से पलक-पांवड़े बिछाकर भैया के आने की प्रतीक्षा करती है।[6] भैया-बहिन के भावुक संबन्धों पर आधारित इन गीतों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

कैड़्या से ऊठी बादळी रै या कैड़ै बरसैण जाय

राजा भातहि

मिल्यूं-मिल्यूं कै करै रै बीरा मिल लेना बांह्य पसार

राजा भातहि।

इसी प्रकार एक अन्य गीत-

कौय आज पाटा पर झगमग व्है रही

कौय आयो मेरी मां को जायो बीर

हीरा-मोती झड़ ल्यायों चून्दड़ी

मोत्यां झड़ ल्यायो चून्दड़ी।।

भैया ने बहिन को हीरा-मोती झड़ चून्दड़ी दी है। बहिन इसे देखकर फूला नहीं समा रही है, उसे इस बात की चिन्ता खा रही है, कहीं चून्दड़ी के हीरा-मोती नहीं झड़-पड़ें।

प्रकृति के उपादानों के माध्यम से पारिवारिक जीवन में परस्पर रिस्तों का माधुर्य और प्रकृति के प्रति चेतना या जागृति का समावेश इन लोकगीतों में अनायास ही हो जाता है। सूरज, चाँद और सितारे इन लोकगीतों के मुख्य उपकरण हैं, जीवन की प्रेरणा हैं।[7] वे लोक जीवन की करूणा और प्रेम की सरस अभिव्यक्ति के सबल माध्यम बनकर लोकगीतों में अवतरित हुए हैं -

सूरज रै, रैतु मौड़ै मौड़ै उगरै, मेरा जाता रै जँवाई को

चिलकै साफो

डूंगर रै, रैतु छोटो सो व्है जाय मेरी जाती रै मरवण को

चिलकै पोमचो

सूरज रै, रैतु मन्दरो सो उग जाय, मेरी जाती रै मरवण नै

लागै सामै तावड़ो।

बेटी ससुराल के लिए विदा हो रही है। माँ को भय है कि धूप में बेटी को तकलीफ होगी-कोमल सी बालिका कुम्हला जायेगी। सूरज राजा से प्रार्थना कर ही है - हे सूरज राजा। तनिक विलम्ब से निकलना या निकले तो मन्दरा सा (झीना) निकलना-मेरी दूधोन्हाई बेटी आज ससुराल जा रही है, सामने रहे तो धूप हो जायेगी। प्रकृति के साथ यह तदात्मय और अधिकार भाव इन लोकगीतों में बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत होता है।

इन लोकगीतों में प्रकृति परिवेश का बड़ा सरस वर्णन होता है, इन गीतों की स्वर-लहरी को सुनकर आम जन के मन में पेड़-पौधों, बेल-बूटों, तालाब, नदी-नहरों के प्रति स्वत: ही अनुराग पैदा हो जाता है, जो आज के समय में पर्यावरण संरक्षण के लिए अति आवश्यक है। विभिन्न तीज त्योहारों के अवसर पर ऋतु-मौसम के अनुसार ये लोकगीत आमजन के मुँह से साकार हो उठते हैं। श्रावण का महिना तीज का उत्सव लेकर आता है तथा प्रकृति अपना सौन्दर्य बिखेरती है।[8] शुष्क मरुधरा पर बसन्त और वर्षा अधिक सुहावनी लगती है। अत: इनमें हींदा (झूला या हिंडोला), सावण, वर्षा, तीज आदि गीतों द्वारा प्राकृतिक परिवेश का आनन्द लिया जाता है। सावण और तीज के अनेक गीत हैं, जिनमें कुछ इस प्रकार है[9]-

1. **झिर-मिर झिरमिर मेवो बरसै**
   आई आई ऐ मां मेरी सावणियारी तीज
   म्हानैं तो खिंदावे सुगनी सासरिए
   सावण मैं ओ राज।
2. **राम अर् लछमण दोन्यूं भाई, दोन्यूं बन मै जाय**
   ऐ जी कोई राम मिलावै तो
   ना कोई जोड़ो ना कोई डाबो, ना कोई समन्द तळाव
   सीता का सत सैं उठी बादळी बरसण लाग्यो मेंह
   जोहड़ा भी भरग्या, डाबा भी भरग्या, भरग्या समन्द तळाव
   ऐजी कोई राम मिलावै तो।

ये गीत लोकानुरंजन के सबल साधन हैं तथा वर्तमान व्यस्त मानव जीवन रूपी अंधकार में चिराग के समान है। आधुनिक आर्थिक मानव जो मशीनी जीवन जी रहा है और भम्रित सा है। ये गीत उन्हें स्थिर कर आराम के साथ खुशी के क्षण दे जाते हैं।[10] साथ ही साथ प्रेम और भाईचारे का संदेश भी देते है, यथा- होलिकात्सव के समय फागुन का रंग भरा मादक उल्लास जन-जीवन में उमंग और उत्साह भर देता है। जगह-जगह नव यौवन बालाएं व स्त्रियाँ लूहर खेलती गाती नजर आती हैं।

इस क्षेत्र में स्त्रियों के ये गीत होली के डाण्डा रोपण (माघ पूर्णिमा) से ही शुरू हो जाते हैं। इन गीतों में मनोरंजन के साथ कोई ना कोई संदेश भी निहित होता है। होलिकात्सव का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

होळी कै डान्डै फूल झड्या नान्या कर कर कै बीणा राज
आया ग्वाल्या खोस लेगा कैं नै जाकर खद्यूं राज
आगै सूं मेरो बीरो मिलगो बैने जाकर खद्यूं राज
ल्यादेगो मैनें लाल कटोरी, झड़ फूलां की साड़ी राज
झामूं लाग, झामूं लाग, गढ़ मै चान्दणो।

वर्तमान मानव समाज जो अनेकानेक वर्गो में बँटता जा रहा है। जातिवाद, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद जैसी संकीर्ण विचारधाराऐं प्रबल होती जा रही हैं। ये लोकगीत अपनी सरस अभिव्यक्ति द्वारा इन विखण्डनकारी शक्तियों को सहज रूप से ही समाप्त प्राय: करने की क्षमता रखते हैं। इन गीतों का संदेश मानव को उस सत्य से अवगत करा देता है, जहां अनेकता नहीं बल्कि एकता है-

अं धरती मां सै उगल्या सारा
अं धरती मैं मिलज्यांगा,
अकड़ कोरी क्यूं प्यारा।।[11]

तोरावाटी क्षेत्र के लोकगीत की भाव-भूमि बड़ी व्यापक है, जिनमें लोक-जीवन के खट्टे मिठ्ठे अनुभव तो हैं ही, साथ में पशु-पक्षियों की उपयोगिता व उनके प्रति हार्दिक लगाव भी उनमें पाया जाता है। राजस्थानी प्रेमिकाओं, प्रियतमाओं और विरहणियों ने कुरजा, कौआ, सुआ, कोयल, पीपहा, हंस, सारस, सोनचिड़ी आदि को अपनी धर्म की बहिन बनाकर अपना सुख दु:ख कहा है, अपने प्रियतम को इनके साथ संदेश भेजा है, कभी-कभी इनसे नाराज भी हुई हैं इन्हें कोसा भी है- उपालम्भ भी दिए हैं। विरहणियों के ऐसे मनोभाव और उनकी गाथाएं इन लोकगीतों के माध्यम से प्रकट होती हैं।[12] इस सन्दर्भ में इस क्षेत्र में गाये जाने वाले ढ़ोलामारू लोककाव्य के दोहे द्रष्टव्य हैं-

समन्दूर ताळ डटायदे ओ मेरा बाबिल कुंझा दे मरवाय
कुंझडल्यां कै बौलबै मेरो जनम अगारथ जाय
कुंझा म्हारी बहनड्ल्यों मैंने पंख उडारी द्योय
हम मिल आंवां म्हारा पीव सैं थानै द्यांगी उल्टी आय
कुआ व्है छपवाय द्यूं समन्दर छाप्यो न जाय
मन मान्या साहिबा राज करो।

किसी भी युग में देश या समाज के लिए सामाजिक समरसता अत्यन्त आवश्यक है। सामाजिक समरसता से संबन्धित अनेक

लोकगीत सामाजिक उत्सवों में गाये जाते हैं। विवाह के दिन की पूर्व संध्या पर चाक-भात गीत गाये जाते हैं।[13] स्त्रियाँ इस सन्ध्या पर कुम्हार के घर जाती हैं तथा कुम्हार को अपने लोकगीतों के माध्यम से कुछ इस प्रकार कहती हैं -

तुरै कुम्ह्र्या का चितरै संजाय मेरी रै दोगड़ पर
मोर्यौ मांड ऐ
कोई ओड़ां तो पाछै दादर कोय बीच हजारी
ढोल मांड ऐ।

''अतिथि देवो भव:'' की भावना हमारी सांस्कृतिक विरासत रही है।[14] इस प्रकार हमारे सांस्कृतिक मूल्यों को बचाने में लोकगीतों का अमूल्य योगदान है। मेजबान स्वयं दु:ख सहन कर लेते हैं, लेकिन अतिथियों को लेशमात्र भी दु:ख देना, हमारी संस्कृति के विपरीत है। ऐसी भावना के बल पर ही हमारी संस्कृति आज तक अनवरत है। इस भाव की अभिव्यक्ति का एक उदाहरण देखिए-

जंवाँई राजा ओ होद खुदायो थारा टै,
जवाँईओ न्वाहण की चतुराई थारी ओ
जवाँई राजा सैज बिछाई थारा टै,
जवाँई ओ सोवण की चतुराई थारी ओ।

दूसरी तरफ इस क्षेत्र की स्त्रियाँ खुशी और आत्मानंद के लिए अवसरानुकूल कभी-कभी अपने मेहमानों को प्रेम भरी गाली गीतों के माध्यम से देती हैं। मेहमान भी इन गीतों में गालियों को फूलों की महक समझकर ग्रहण करते हैं। ऐसे गीतों को इस क्षेत्र में ''सीठणा देना'' कहा जाता है। सामान्यत: ये गीत हास्य-परिहास व व्यंग्य के भावों से परिपूर्ण होते है, लेकिन फिर भी ये गीत हमारे अन्दर छिपे किसी न किसी मानवीय गुण को उदीप्त कर जाते हैं। जैसे इस क्षेत्र में प्रचलित एक लोकगीत की अभिव्यक्ति में स्त्रियाँ अपने समद्धी[15] (वर/वधू का पिता) की बहादुरी को ललकारती हैं, हँसी मजाक के भाव से युक्त इस गीत में समद्धी को असंभव कार्य को संभव करने के लिए कहती हैं। ऐसे गीत कायर पुरूषों के दिल में भी वीरता के भाव पैदा कर जाते हैं, यथा-

बहती नन्दी कै लगा रै आडी टाँग
उड़ता मोर्या की पकड़ल्या रै पाँख
उड़ती तीतर की पकड़ल्या रै टाँग
मर्द तुनै जब समझूँगी रै।

जीवन का अस्तित्व श्रम पर आधारित है, सामूहिक प्रगति भी समूह के श्रम पर टिकी है। लेकिन आधुनिक मशीनी युग में मानवीय शारीरिक श्रम की महत्ता घटी है। श्रम की महत्ता और प्रतिष्ठा को लेकर भी अनेक लोकगीत रच गये हैं, यथा-

ऊठ सकाळै पाणी नै चाली हाळी गयो हळ बावणै नै
अस्सी रै ईंट पिच्चासी छज्जा छ्यात लादणी पाछै नै।

तोरावाटी क्षेत्र में अनेक ऐसे लोकगीत प्रचलित हैं, जो हमें पौराणिक एवं ऐतिहासिक आख्यानों की जानकारी भी प्रदान करते हैं। ये लोकगीत विभिन्न ऐतिहासिक प्रसंगो व लोककथाओं की कथावस्तु पर आधारित होते हैं।[16] ये लोकगीत इतिहास के शोधकर्त्ताओं के लिए बहुमूल्य ऐतिहासिक साक्ष्य हैं। यद्यपि इनका स्वतन्त्र साक्ष्य के रूप में प्रयोग तो नहीं किया जा सकता परन्तु उनसे प्राप्त सूचनाओं का उचित अन्वेषण करके ऐतिहासिक घटनाक्रम को विस्तृत रूप से समझा जा सकता हैं। ऐसी ऐतिहासिक घटनाओं के बहुत से उदाहरण इन लोकगीतों में समाहित हैं। यथा-

हरिशचन्द्र राजा को भंगी ने मोल ले लिया, सत्य-हरिशचन्द्र की लोककथा के इस प्रसंग पर आधारित एक धमाल लोकगीत इस प्रकार है-

हरिशचन्द्र राजा नै सरदारों भंग्यां ले लियो मोल
सूरां नै हरिया पाणी प्याये, पहली ल्यूंगो खोल
मुरद घाट पर तुनै रहणों खूं बजाकै डोल।

इसी प्रकार महाराणा प्रताप की शौर्यगाथा को प्रकट करने वाला यह गीत भी उल्लेखनीय है-

नीला घोड़ा रा असवार
म्हारी मेवाड़ी (राणा प्रताप) सरदार
राणा सुणतो ही जा ज्यो जी।
राणा थारी डकार सुण-सुण
अकबर धूज्यो जाय
हल्दी घाटी रंगी खूण स्यूं
नाळो बहतो जाय।।

राजस्थान की भूमि वीर-वीरांगनाओं की रही है, इन लोकगीतों के माध्यम से उनका चरित्र परिलक्षित होता है, वर्तमान नारी समाज जो पाश्चात् संस्कृति के कुप्रभाव से कुछ बहक सा गया है। जो भारतीय नारी अपनी सहिष्णुता एवं पारिवारिक सम्बन्धों की प्रगाढ़ता के लिए विश्व भर में ख्यात रही है। वह नारी आज अविश्वासी हो सामजिक जिम्मेदारी को तोड़ती नजर आती हैं। ये लोकगीत उन्हें पुन: पुरातन आदर्श नारी का रूप धारण करने को प्रेरित करते हैं।[17] उदाहरणस्वरूप इस क्षेत्र में प्रचलित एक लोकगीत

गोगाजी की लोककथा पर आधारित है, जिसमें, माना जाता है कि गोगाजी के जीवन की शुरूआत तलवार की धार के साथ हुई, आखिर मां और पत्नी-केलमदे को छोड़कर, वह गोलोकवासी हो गया।[6] मां बहुत दु:खी हुई, लेकिन राजस्थानी वीरांगनाओं की परम्परा के अनुसार केलमदे अपनी सासु को समझाती है, इस प्रकरण को तोरावाटी क्षेत्र की स्त्रियाँ अपने लोकगीतों के माध्यम से कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त करती हैं-

सासु रौवै, बड़ो धीरज बंधावै
रोय गुमावै, चन्दा नैण
जै रोयां सूं, सासु जाहर आवै
तो रोय भरू ऐ तळाव
कुवो व्है तो सासू छांप द्यूं समन्दर छाप्यो न जाय
कागद व्है तो बांच द्यूं सासू कर्म नै बांच्यो जाय।

उपर्युक्त लोकगीतांश वर्तमान नारी समाज को विपत्तिकाल में भी सामाजिक जिम्मेदारी निर्वहन की शिक्षा देता हैं।

इन लोकगीतों में कुछ इस प्रकार के भाव भी मिलते हैं, जो मनुष्य को पलायनवादी बनने से रोकते हैं। उन्हें यथार्थ जीवन में संघर्ष करने की प्रेरणा देते हुए सामाजिक कृर्त्तव्य का बोध कराते हैं, ऐसी इसी भाव-भूमि का लोकगीत जो गोपीचन्द-भर्तृहरी की लोककथा पर आधारित है, यह गीत दृष्टव्य है-

उल्टो बावड़ज्या गोपीचन्द तेरी बिल्ख पड़ैगी नार
उंडै सिळा बास्या टुकड़ा चाबै हो ज्यागो ख्वार
सोळा राण्यां बारहा कन्या छोड़ गयो मझधार।।

तोरावाटी क्षेत्र की लोक संस्कृति को प्रकाशित करने वाले विविध विषयों के गीत भी गाये जाते हैं। इनमें कुछ गीत ऐसे भी हैं जिनमें किसी एक प्रसंग या विषय का होना, निश्चित नही होता है अर्थात एक गीत में कई प्रसंग समाहित होते हैं। वस्तुत: ये गीत लोकानुरंजन के लिए गाये जाते हैं। जिनको गा-सुनकर आज की भाग-दोड़ भरी जिंदगी का मानव-मन पुलकित और तरो-ताजा हो जाता है। जीवन में मानसिक तनाव को दूर करने में लोकगीतों का बड़ा महत्त्व है। समान्यतया ऐसे लोकगीतों में शृंगार एवं हास्य रस का पुट पाया जाता है। ऐसे गीतों के कुछ उदाहरण इस प्रकार है-[18]

1. **बैठ बा....टै ऊँट ल्यायो, चढ बा...टै घौडी.**
   आछी लागौ रै बनखण्ड में सियाराम की जौडी।।
2. **जैपर की जलेबी खाई दौसा को केळो**
   मैं तो खड़ी.खड़ी.दे.ख्याई रै पांडूपोळ को मेळो।।

निष्कर्ष

तोरावाटी लोकगीतों के विवेचन से स्पष्ट है कि ये लोकगीत न केवल मानव विचारों-मनोभावों के सौम्य स्वरूप की अभिव्यक्ति कर उनका संवर्द्धन व परिमार्जन करते है, अपितु वर्तमान मानव समाज व प्रकृति के अंधाधुंध क्षरण के दौर में तत्संबन्धित अनेक समस्याओं का सहज समाधान भी दे जाते हैं। एक तरफ जहां ये लोकगीत मानव-समाज हेतु हितकर जच्चा-बच्चा सुरक्षा, श्रम-महत्ता, रिश्तों की पवित्रता व सादगी, सामाजिक समरसता, पुरातन सांस्कृतिक व धार्मिक मूल्य संरक्षण, यथार्थ जीवन, नैतिक कर्त्तव्य बोध तथा लोकानुरंजन आदि की शिक्षा देते हैं। वहीं दूसरी ओर मानव के लिए नुकसानदायी क्षेत्रवाद, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, मानसिक तनाव व पलायनवाद जैसी गंभीर चुनौतियों के प्रति सहज ही सजग कर जाते हैं।

इसी प्रकार मानव जीवन हेतु प्रकृति कितनी अमुल्य है और प्राकृतिक उपादानों के प्रति प्रेम व संरक्षण की सरस अभिव्यक्ति इन लोकगीतों में समाहित है। इन लोकगीतों में पारिवारीक, धार्मिक व आर्थिक जीवन तो समाविष्ट है ही, साथ ही अनेकानेक लोकगीत पौराणिक एवं ऐतिहासिक आख्यानों पर भी रचे गए हैं, जो इतिहास-शोधार्थियों के लिए ऐतिहासिक-अन्वेषण समझने में बडे.सहायक सिद्ध हैं।

संदर्भ सूची

1. चूण्डावत, रानी लक्ष्मीकुमारी, सांस्कृतिक राजस्थान, राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि., जयपुर 1994, पृ.सं. 126-27
2. उपर्युक्त, पृ.सं. 127
3. तोरावाटी के स्व संकलित ''लोकगीत संग्रह'' 2009-10
4. नीरज, (डॉ.) जयसिंह, शर्मा, (डॉ.) भगवतीलाल (संपा.), राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ.सं. 190
5. तोरावाटी के स्व संकलित, पूर्वोक्त
6. गुर्जर, राम सिंह, गुर्जर समाज का समाजिक एवम सांस्कृति अनुसंधान (अप्र. लघु शोध), 2009, पृ.सं. 132
7. नीरज, (डॉ.) जयसिंह, शर्मा, (डॉ.) भगवतीलाल (संपा.), पूर्वोक्त, पृ.सं. 189
8. प्रकाश, टी.सी., शेखावाटी वैभव, शेखावाटी इतिहास शोध संस्थान, शिमला, झुन्झुनू, 1993, पृ.सं. 67-68
9. तोरावाटी के स्व संकलित, पूर्वोक्त

10. बालौत, मुंशी खां एवं सहारिया, (डॉ.) पी.एस. (संपा.), मेवात का इतिहास और संस्कृति, मेवात साहित्य अकादमी, संस्थान, अलवर, 2015, पृ.सं. 161
11. तोरावाटी के स्व संकलित, पूर्वोक्त
12. चूण्डावत, (डॉ.) लक्ष्मी कुमारी एवं स्वर्णकार, (डॉ.) रमेशचन्द, राजस्थान के रीति रिवाज, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 2002, पृ.सं. 130-32
13. भटनागर, चेतना, उन्नसवीं सदी में तोरावाटी क्षेत्र का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास (अप्रा. लघु शोध), 1998-99, पृ.सं. 57-58
14. शास्त्री, उमेश, भारतीय संस्कृति के तत्व, अजमेरा बुक कम्पनी, जयुपर, 1997, पृ.सं. 8
15. तोरावाटी के स्व संकलित, पूर्वोक्त
16. चूण्डावत, रानी लक्ष्मी कुमारी, सांस्कृतिक राजस्थान, राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि., जयपुर, 1994, पृ.सं. 131
17. शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ.सं. 207
18. तोरावाटी के स्व संकलित, पूर्वोक्त